[Conference-Composition of Colours :December,2014] ISSN- 2350-0530
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v2.i3SE.2014.3576

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

चित्रकला में रंगों का समन्वय एवं संयोजन (प्रागैतिहासिक काल एवं आधुनिक काल के संदर्भ में)

डॉ. प्रमिला षेरे
सहायक प्राध्यापक (इतिहास)
श्री अटल बिहारी बाजपेयी शास. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर
Email: pramila_shere@rediffmail.com

भारत के विभिन्न क्षेत्रों से उपलब्ध वस्त्रों, पाशाणचित्रों, मृत्तिका पात्रों, लाल–पीले रंगों में चित्रित रेंगते हुए कीड़ों, पशुओं, पक्षियों मनुष्यों आदि की आकृति का अध्ययन करके प्रागैतिहासिक भारत के कलाप्रेम का सहज ही में परिचय मिल जाता है। आज की भाँति आदि मानव भी सौन्दर्योपासक था। इसी सौन्दर्यप्रेम के कारण वह अपने अमूर्त भावों को मूर्त रुप देने की ओर प्रवृत्त हुआ। इसके प्रमाण हमें मोहनजोदड़ो तथा हडप्पा की खुदाईयों से उपलब्ध कला सामग्री में देखने को मिलते है। ऋगवेद की प्राचीनतम मंत्र संहिता की एक ऋचा से ज्ञात होता है कि उस समय चमड़े पर चित्र अंकित करने का प्रचलन था। ऋगवेद के कुछ मंत्रों में यज्ञषालाओं की चौखटों पर द्वार देवियों के चित्र अंकित किये जाने का उल्लेख मिलता है।
सम्राट अषोक द्वारा पल्लवित एवं संरक्षित कला की थाती आज भी देखने को मिलती है। पटचित्रों के निर्माण में बौध्दकला की विशेष ख्याति रही है। बाघ और अजंता के चित्रों में रेखाओं का सुलेखन और रंगों के प्रयोग की विभिन्न परिपाटियाँ इस युग के चित्रांकन का विकास व्यक्त करती है। अजंता, एलोरा और बाघ की गुफाओं की चित्रकारी में गुप्तकालीन कला का वास्तविक रुप देखने को मिलता है। भारतीय चित्रकला के इतिहास में भित्तीचित्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। भित्तिचित्र भीमबेटका, जोगीमारा, बाघ, अजन्ता बादामी, सित्तनवासल, ऐलोरा, ऐलीफेंटा की गुफाओं में देखने को मिलते है। चित्रकला के उत्थान में दक्षिण भारत भी अग्रणी रहा है। भारतीय चित्रकला के इतिहास में राजपूत षैली की अपनी विशिष्टता और अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। भारत में मुगल काल की स्थापना के बाद चित्रकला के क्षेत्र में एक नयी दिषा प्रकाष में आयी। पहाड़ी चित्र षैलियों की निर्माण भूमि हिमाचल रहा है–जम्मू, टिहरी, गढवाल, कल्लू, चम्बा, बसौली, कांगड़ा आदि इसके क्षेत्र रहे है।

विभिन्न कालों में चित्रकला में रंगों का समन्वय एवं संयोजन :

चित्रकला को अन्य शिल्पों से उत्तम समझा जाता था–

" चित्रं हि सर्व षिल्पानां मुखं लोकस्य च प्रियम्"

वात्सायन ने अपने **'कामसूत्र'** में चित्रकला के छः अंगों का वर्णन किया है–रुपभेद, प्रमाणम्, भाव, लावण्य–योजनम्, सादृष्यम् वर्णिका–भंग। वर्णिका भंग षडंग का छठा तथा अंतिम अंग है। नाना वर्णो के योग से चित्र में जो भंगिमा उत्पन्न की जाती है, उसे ही वर्णिकाभंग कहा जाता है। चित्र में किस स्थान पर किस रंग का प्रयोग करना चाहिए तथा किस रंग के समीप किसका संयोजन होना चाहिए, वर्णिकाभंग द्वारा ही इस वर्ण–विधि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। रंगों की विभिन्नता से ही वस्तुओं की भिन्नता प्रकट होती है। भारतीय कला दो रुपों में आगे बढ़ी उसका एक रुप षास्त्रीय रहा जिसके निर्माता या तो राज्याश्रित पेषेवर कलाकार रहे या स्वतंत्र रुप से कला की साधना में अभिरत रहे। षास्त्रीय कला में अजन्ता, बाघ आदि के भित्ति चित्रों में रुपायित हुए और बाद में उनका पूर्ण विकास मुगल राजपूत तथा पहाड़ी चित्रषैली के रुप में हुआ। कला का दूसरा रुप आँगन के स्वच्छंद वातावरण में पलकर आगे बढ़ा। बिना किसी अवलम्ब के यह लोककला सौम्य गति से निरन्तर आगे बढ़ती रही। अजन्ता के चित्रों में सुंदर रंगों का प्रयोग किया गया है और चित्र में उनका मिश्रण बड़ा सुरुचिपूर्ण है। अजन्ता के चित्रों में अंकन–विधि और रंग–संयोजन बड़ी निपुणता से किया गया है। उनमें गेरुवा, रामरज, हरा, काजली, नीला, पीला, काला और सफेद रंगों का विषेष प्रयोग हुआ है। उनकी प्रयोग–विधि सर्वथा निजी है। रंग गहरे होने पर भी भारीपन से मुक्त है। जिन पत्थरों पर चित्र अंकित है, वे खुरदुरे है और उनको विषेष प्रकार के षुभ्र लेपन द्वारा तैयार किया गया है। बाघ और अजन्ता के चित्रों में रेखाओं का सुलेखन और रंगों के प्रयोग की विभिन्न परिपाटियाँ इस युग के चित्रांकन का विकास व्यक्त करती है। दक्षिण भारत की चित्रकला अजन्ता, सिगिरिया, बाघ, बादामी और ऐलोरा की प्रख्यात चित्रकला से भिन्न है। यहाँ दीवार की गच मोटे चूने के गारे की है। इसके ऊपर चूने की पतली पुताई की गई है। फिर रंग से चित्रण की विधि या चूने के अनुरुप रंगाई की गई है। सित्तनवासल में चित्रों के लिए जमीन चूना और बालू के गारे से तैयार की जाती थी। इसके बाद सीधे धातु के रंगों से चित्र उकेरते थे। रंगों में गोंद या सरेस जैसी किसी चीज की मिलावट नहीं करते थे। रंगों में चूने का पानी मिला हुआ रहता था जिसे पलस्तर सूख जाने पर प्रयोग करते थे। यह एक खालिस रंगों की चित्रकारी का काम है। यह उस चित्रकारी से भी भिन्न है जिसमें चूने की गीली पुताई पर ही रंगों से चित्र बनाते हैं। तंजोर के चित्रों में इसी तकनीक का प्रयोग मिलता है। दक्षिण भारत में ममंदूर, तिरुमयम्, कांची, नार्त्तामेर्ले, सोमपालयम, लेपाक्षी, तिरुक्कोकर्णम्, मलैयडिपट्टि, ट्रावनकोर, कोचीन

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

के मंदिरों में जहाँ भी भित्ती चित्र बने है वहाँ 'खालिस रंगों की चित्रकारी की ही तकनीक अपनाई गई है। तंजोर में भीतर के मोटे पलस्तर पर महीन चूने की जो पुताई है वह भीतरी पलस्तर के सूखने से पहले ही की गई थी। इस प्रक्रिया में रंग पलस्तर की ऊपरी सतह से भीतर तक चले जाते है और थोड़े समय में ज्यों–ज्यों पानी सूखता है चूने का गीला कैल्सियम हाइड्रोक्साइड, वायु के कार्बन डाय आक्साइड के साथ मिलकर सक्रिय हो जाता है और इस प्रकार दीवार की सतह पर एक सरंक्षी पारदर्षक चिकनी परत बना देता है। रंगों में काला, पीला, भूरा, लाल, नीला, हरा पीताभ हरा और आसमानी रंग प्रमुख है। इसमें सफेद रंग के लिए चूना, काले रंग के लिए लकडी का कोयला या काजल, नीले के लिए नील का प्रयोग हुआ है। आसमानी रंग बनाने के लिए नील में ही चूना या बारीक बालू के कण मिलाते थे। पीला, भूरा और लाल रंग गेरु और पीली मिट्टी (रामरज) से बनाते थे। हरे रंग के लिए हरी मिट्टी का प्रयोग करते थे। नील और पीले गेरु को मिलाकर पीताभ हरा रंग, नील और हरी मिट्टी मिलाकर नीला रंग तैयार करते थे।

मुगल कालीन चित्रों में रंगों का संयोजन :

अकबर के चित्रकार अधिकांषतः विषुध्द भारतीय रंगों का प्रयोग करते थे जैसे सिन्दूर, पेवड़ी, लाजवर्दी, हिंगुल, जंगाल, गेरु, हिरोंजी, रामरज, हरा ढाबा एवं नील आदि। इन रंगो के मिश्रण से बड़े सुन्दर चमकदार और मीने की तरह दमदमाते हुए चित्र बनाए जाते थे उनके ऊपर प्रभा के लिए स्वर्णकारी की जाती थी। अबुल फजल का यह कथन सही प्रतीत होता है कि अकबर के राज्यकाल में रंगों के मिश्रण में विषेष प्रगति हुई है। एक–एक चित्र पर कई–कई कलाकार काम करते थे, कोई वसली बनाता था तो कोई उस पर रुप रेखाएँ। एक अन्य उस पर चित्रांकन करता था और कोई दूसरा अन्य रंग करता था। धीरे–धीरे अपने क्षेत्र में हर कलाकार विषेषज्ञ हो जाता था। इस प्रकार यह कला किसी एक कलाकार की व्यक्तिगत षैली नहीं है। जहाँगीर के काल में चित्रों को हाषिये से सजाने की कला प्रारंभ हुई जिसने चित्रों को अद्‌भुत सौन्दर्य प्रदान किया। चित्र के चारों ओर सुन्दर बेलबूंटेदार डिजाइन में हाषिया बनाया जाता था। इसमें प्राकृतिक दृष्य, पेड़ चट्टाने आदि तो होते ही थे, कभी–कभी नन्हे पक्षियों से भी इसे सजा दिया जाता था। कभी किसी कथानक का कोई दृष्य भी दिखा दिया जाता था। इसमें लाल नीले आदि चमकीले रंगों के साथ अधिकांषतः सोने का काम किया जाता था जो झिलमिलाता रहता था और चित्र को प्रभावषाली ढंग से एक सुन्दर पूर्णभूमि में प्रस्तुत करता था।

षाहजहाँ के समय चित्रों का विषय मुख्यतः षाही है और जीवन के साधारण पक्षों का चित्रण इसमें कम है। इसमें भड़कीले और सोने के रंगों का अधिक प्रयोग होता था। राजस्थानी षैली के चित्रों में वर्णन का सूक्ष्म प्रदर्षन, सुन्दर रंगों का मिश्रण और अनुभूतियों का व्यक्तिकरण मुख्य विषेषताएँ है।

चित्रकला की विभिन्न षैलियों में रंग संयोजन :

राजपूत षैली के चित्रों में लाल हिंगुली रंगों के हाषिये दर्षनीय होते है। राजपूत षैली में चटकीले और चमकदार रंग–संयोजना भी अपनी अलग विषेषता रखती है। जयपुर षैली के चित्रों में मुख्यतया हरे रंग का उपयोग किया गया है। इसी प्रकार उनका हाषिया, रजतवर्ण, काला तथा लाली युक्त है। नायिकाओं के आभूषण और रंग रंजित हाथ पैरों की षोभा राजपूत षैली के चित्रों की अपनी विषेषता है। अपभ्रंष षैली के चित्रों में चटकदार रंगों तथा सोने का अत्यधिक प्रयोग होता था। अपभ्रंष में लाल–पीले और लाजवर्दी रंगों का अत्यंत बाहुल्य से उपयोग होता था, राजस्थानी में अन्य चटकीले रंगों का भी प्रयोग किया गया है और इस षैली के चित्रों में लाल पीले रंग प्रभावषाली नहीं रह गए है।

रंगों की दृष्टि से जैन चित्रों की भी अपनी विषेषता है। उनकी पृष्ठभूमि में बहुधा लाल रंग का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार आवष्यकतानुसार बदली, पीत, ष्वेत तथा नीले रंगों का भी प्रयोग किया गया है। राजपूत षैली के चित्रकारों ने भी यद्यपि लाल रंग का उपयोग किया है, किन्तु उनका दृष्टिकोण श्रृंगार को उभारना मात्र रहा है। जम्मू स्कूल की चित्रकला में जो रंगों का संयोजन किया गया है। वह वास्तव में बहुत सुन्दर है। ग्रामीण क्षेत्र की वनस्पति को जैतुनी हरा, नीला–हरा और भूरे हरे रंगों से चित्रित किया गया है, कि वे दूर होते हुए धुंधले दिखाई पड़ते है जो कि दूरस्थ स्थान से प्रतीत होने का भान कराते हैं। ग्रामीण क्षेत्र के चित्र पीले और भूरे रंगों से चित्रित किए गए है। ड्रेपरी में लाल रंगों का संयोजन किया गया है जो कि बहुत ही चमकदार है एवं पहाड़ियों तथा मथुरा पैलेस के मेहराबों से पूरी तरह भिन्न प्रतीत होता है। अण्डे के योक के भांति पीले और चमकदार रंग का प्रयोग कृष्ण की धोती में किया गया है जो कि कृष्ण के वीर चरित्र का प्रतीक है। नीला रंग बहुत ही मुष्किल से रंगों के संयोजन में प्रयोग किया गया है जबकि वास्तव में सिर्फ नीलारंग कृष्ण के षरीर के आवरण के लिए प्रयोग हुआ है। सिल्वर रंग यमुना के पानी को दर्षाने के लिए प्रयोग किया गया है। पानी की लहरों को दिखाने के लिए मेटल लीफ का प्रयोग किया है। सुनहरे रंग का प्रयोग बहुत कम किया गया है और जहाँ किया गया है वहाँ बहुत ही सुन्दरता के साथ इसका प्रयोग किया गया है। ऐसे चित्र जो कि जंगल में लगी आग को दर्षाते है उनमें सुनहरे रंग का प्रचुर मात्रा में प्रयोग

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

किया गया है। जंगल में लगी आग को जीवंत दर्षाने के लिए ही सुनहरे रंग का प्रयोग किया गया है। रात का चन्द्रमा सदैव सुनहरे रंग से और तारों को सिल्वर रंग से चित्रित किया गया है। यदि हम बात करे मालवा की तो सन् 1650 ई. में मालवा की चित्रकला अपने चरम बिंदु पर थी जो कि स्वरुप, रंग, वृक्षों का उपयोग कला और मानवीय देह इत्यादि में परिलक्षित होती है जो कि एक विषिष्ट जीवंतता के साथ प्रकट किये गये है। इस दौरान मनुष्य के षरीर का चित्रण हल्के जैतूनी हरे रंग से किया गया है। "A Malavya is dark like the kidney been" यह एक विषिष्ट बात है कि मालवा प्रकार के चित्र में व्यक्ति के षरीर का चित्रण गहरे हरे रंग से किया गया है और यही परम्परा सत्रहवीं षताब्दी की मालवा चित्रकला में परिलक्षित होती है। रासबेली की चित्रकला में मुख्यतः मानव षरीर पर प्रमुख रुप से ध्यान दिया गया है। महिला और पुरुष जीवंत दिखाई पड़ते है एवं जीवंतता के साथ महिला पुरुष, पक्षी, जानवर और निर्जीव वस्तुएँ जैसे पेड़, बादल, कमल से भरपूर तालाब इत्यादि में रंगों का संयोजन सूक्ष्म रुप से किया गया है। यदि हम मालवा की षैल चित्रकला की प्रचुरता एवं प्राचीनता को देखे तो यह कहना अतिष्योक्तिपूर्ण नहीं होगा कि यह स्थान भारतीय चित्रकला का उद्गम स्थल है।

लोक चित्रों में रंगों का समन्वय :

बंगाल की लोककला के प्रचार साधन पटचित्र रहे है। ये पटचित्र यद्यपि व्यापारिक दृष्टि से बनाये जाते है, तथापि उन्हीं के माध्यम से बंगाल की लोककला उड़ीसा, आसाम और उत्तर भारत के विभिन्न प्रदेषों में प्रचारित हुई। पटचित्रों के निर्माता (पटवे) ये कलाकार रंगों के प्रयोग और डिजाइनों को बनाने में बड़े कुषल होते है। पटचित्रों के अतिरिक्त बंगाल की लोककला का दूसरा रुप मिट्टी के घड़ों तथा उनके ढक्कनों पर की गयी सज्जा में देखने को मिलता है। इस चित्रकारी में पुरुष, स्त्री, पषु–पक्षी, फूल–पत्तियाँ और बेल–बूटे आदि अनेक विषयों का समावेष होता है और उनके लिए जिन रंगों का प्रयोग होता है उनमें पीढिया (सफेद), हल्दिया (पीला) तथा लाल रंगों का समन्वय दर्षनीय है। इसी प्रकार राजस्थान में मेंहदी मांडने की प्रथा अधिक प्रचलित है। प्रत्येक त्यौहार, उत्सव तथा मौसम में वहाँ मेंहदी मांडने की प्रथाएँ अलग–अलग है। उत्तर प्रदेष में साँझी का त्यौहार बड़े उल्लास के साथ कई दिनों तक मनाया जाता है। इस उत्सव पर गोबर की एक बड़ी प्रतिमा बनाई जाती है, जिसको सुन्दर वस्त्राभूषणों से सज्जित करने के उपरान्त उस पर सुनहली, रुपहली पन्नियाँ चिपकायी जाती है। सेलखरी पीसकर सफेद चूर्ण से स्त्रियाँ घरों के आँगनों, दीवालों तथा द्वारों पर चित्रकारी करती है। कभी–कभी खड़िया चूर्ण की जगह आटे या कलई से भी काम लिया जाता है। पहले सफेद चूर्ण से अल्पना का खाका तैयार किया जाता है और बाद में उसको त्रिभुज, चतुर्भुज, षट्कोण, अष्टकोण, वर्ग, बिन्दु सरल और आड़ी–तिरछी रेखाओं में विभाजित कर उनमें तरह–तरह के रंग भरे जाते है। इन रंगों को अधिक टिकाऊ बनाने के लिए उनमें गोंद घोल दिया जाता है। अल्पना में प्रायः ज्यामितिक ढंग की रेखाएँ होती है। इन लोकचित्रों में रंगों और रेखाओं की भी अपनी मौलिकता होती है। सफेद, हरे, नीले और पीले रंगों का अधिकता से प्रयोग किया जाता है। इन रंगों को बनाने में विषेष कौषल होता है। प्रायः वे आटा, हल्दी, चावल, खड़िया आदि सर्वसुलभ गृहज वस्तुओं से तैयार किये जाते है। जहाँ तक रेखाओं का संबंध है उनकी मादकता देखने वाले को दूर से ही आकर्षित कर लेती है। उनमें सुघराई और बारीकी की अपेक्षा भावात्मक अनुभूति की प्रधानता होती है। यह लोककला अपने गौरवषाली अतीत के कारण ही नहीं अपनी उपयोगिता के कारण भी महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार प्रागैतिहासिक युग से लेकर वर्तमान काल तक चित्रकला की प्रगति को देखकर मानव की कलाभिरुचि का सहज ही परिचय मिलता है। कला के इन उपलब्ध अवषेषों ने इस धरती पर कला के पुरातन अस्तित्व को प्रमाणित करने के अतिरिक्त मानव जाति के इतिहास पर भी नया प्रकाष डाला है। उन्नीसवीं षताब्दी ई. के साथ ही भारत की प्रमुख चित्रषैलियों–राजपूत, मुगल, पहाड़ी और उनसे प्रभावित अनेक षाखाएँ विलुप्त हो गयी। इसका कारण भारत में यूरोपीय कला का प्रवेष था। इस प्रकार भारतीय चित्रकला का ऐतिहासिक सर्वेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि प्रागैतिहासिक युग से लेकर आज तक कला की धारा निरंतर बह रही है। भारतीय चित्रकला में रंगों का समन्वय और संयोजन सत्यम् षिवम् और सुन्दरम् की महती भावना से ओत प्रोत है।

संदर्भ

1 *Bhattacharya s. k. (1996), Krishna-cult in Indian Art, New Delhi : M. D. Publications Pvt.*
2 *गैरोला वाचस्पति (1885), भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाषन.*
3 *खरे डी, खरे एम. डी. (1983), Splendor of Malwa Painting, New Delhi : Cosmo Publications .*
4 *आर. नाथ (1973), मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.*
5 *शास्त्री नीलकंठ (1979), चोलवंष, नई दिल्ली : दि मैकमिलन कंपनी आफ इण्डिया लिमिटेड.*